इमरजेंसी पूर्व के आंदोलन की राह

आलोक मेहता

भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता गोपीनाथ मुंडे का दावा है कि देश में, इमरजेंसी से पहले 1974 जैसी राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियां बन गई हैं। मुंडे के अनुसार, 'महंगाई, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद और आतंकवाद से उत्पन्न स्थितियों पर केंद्र सरकार नियंत्रण नहीं कर पा रही है। 1974 में बेरोजगारी और गरीबी की समस्या चरम सीमा पर पहुंच गई थी तथा विरोधी आंदोलन की स्थिति काबू में नहीं आ पाने के कारण 1975 में इमरजेंसी लगाई गई थी।' मुंडे की धारणा एक हद तक सही हो सकती है। कुछ महीने पहले गृहमंत्री पी. चिदंबरम और अन्य वरिष्ठ मंत्रियों द्वारा बुलाई गई संपादकों की बैठक में भी मैंने यह सवाल उठाया था कि 'क्या अण्णा-रामदेव आंदोलनों से देश में बन रहा असंतोष का वातावरण 1974-75 की तरह उग्र नहीं हो जाएगा?' गृहमंत्री पी. चिदंबरम और सूचना-प्रसारण मंत्री श्रीमती अंबिका सोनी ने तुरंत इस आशंका को गलत बताया तथा एक साथी संपादक ने व्यंग्य किया कि 'क्या आप इमरजेंसी लगवाना चाहते हैं?' साथी संपादक आंदोलन के उस वातावरण तथा इमरजेंसी से अपरिचित रहे होंगे, क्योंकि वह तब लगातार अमेरिका में थे और उन्हें अमेरिकी नागरिकता प्राप्त है। पी. चिदंबरम भी हार्वर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ाई के बाद भारत में वकालत कर रहे थे। सक्रिय राजनीति में तो 1984 के बाद कूदे और राजीव गांधी ने उन्हें 1985 में वाणिज्य उपमंत्री बनाया लेकिन हम जैसे पत्रकार या मुंडे जी जून के इस महीने में 1974-75 के काले कालखंड को याद कर सकते हैं। एक तरफ 1977 से 2012 के बीच भारत में बड़ी आर्थिक प्रगति हुई है। दूसरी तरफ आतंकवाद के साथ संचार माध्यमों के कारण आंतरिक असंतोष पहले से अधिक उजागर हो रहा है। श्रीमती इंदिरा गांधी बांग्लादेश युद्ध में पाकिस्तान से विजय और 'गरीबी हटाओ' के नारे के बल पर 1971 में भारी बहुमत से सत्ता में आई थीं लेकिन 1973 के बाद सर्वोदय नेता जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में मोरारजी देसाई, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, जॉर्ज फर्नांडिस, मधु लिमये, राजनारायण जैसे जुझारू सहयोगियों के बल पर बड़ा आंदोलन खड़ा हो गया था। आंदोलन की चिनगारी विभिन्न राज्यों में असंतोष की आग फैला रही थी। तभी इलाहाबाद हाईकोर्ट के एक फैसले में श्रीमती इंदिरा गांधी का चुनाव ही अवैध घोषित होने से बंगाल के कठोर प्रशासन की सफलता पाए सिद्धार्थ शंकर राय जैसे सलाहकारों ने इमरजेंसी लगाने का कंटीला रास्ता दिखा दिया। उस समय बंसीलाल, जगजीवन राम, वाई. बी. चव्हाण, विद्याचरण शुक्ल, डी.पी. मिश्र, उमाशंकर दीक्षित, के.डी. मालवीय जैसे दिग्गज नेता इंदिरा गांधी के साथ थे। इंदर कुमार गुजराल जैसे नेता साथ रहते हुए भी इस फैसले से खिन्न थे। स्वयं इंदिरा गांधी को बाद में इस गलती का अहसास हुआ और नेहरू परिवार की विरासत एवं लोकतांत्रिक छवि के लिए इमरजेंसी के केवल डेढ़ साल बाद ही उन्होंने लोकसभा के चुनाव करा दिए।

आज सवाल यह है कि बिगड़ी हुई राजनीतिक और आर्थिक स्थितियों के बावजूद प्रतिपक्ष में नेतृत्व कितना दूरदर्शी और शक्तिशाली है। इसी तरह सत्ता में इंदिरा टीम की तरह जमीनी और प्रभावशाली नेता कितने हैं? अण्णा हजारे या बाबा रामदेव की तुलना जयप्रकाश नारायण से कोई मूर्ख भी नहीं कर सकता। मोरारजी देसाई, उस समय के अटल बिहारी वाजपेयी और मधु लिमये जैसा एक भी ईमानदार नेता आज किसी बड़े आंदोलन की बागडोर संभालने की ताकत रखता है? जेल जाने लायक स्वास्थ्य भी कितने नेताओं का है और प्रतीकात्मक जेल भरने की बात अलग है – क्या दो-चार महीने जेल में बिताने लायक नेता किसी आंदोलन की टीम में है? बाबा रामदेव तो रामलीला मैदान में पुलिस की गिरफ्तारी से बचने के लिए महिला वस्त्र धारण कर भागने को उतावले थे। इससे भी बड़ी समस्या यह है कि भ्रष्टाचार और महंगाई पर संघर्ष के लिए आंदोलन की कोई दिशा तथा निराकरण का फॉर्मूला किसी के पास नहीं है। हां, असंतोष भड़काने और अराजकतापूर्ण वातावरण बनाने का इंतजाम अधिक है। 1973-75 में दिल्ली, वाराणसी, पटना, अहमदाबाद या बेंगलुरु में कोई सभा-जुलूस होने पर देश के अन्य हिस्सों में सूचना दो-चार दिन में पहुंच पाती थी। टेलीविजन समाचार चैनल नहीं थे। अखबारों के डाक संस्करण तीन-चार दिन में पहुंचते थे। मोबाइल फोन दूर रहा, सामान्य फोन से संपर्क में घंटों लग जाते थे। तार और टेलीप्रिंटर से भेजी गई खबरें संपादित रूप में अखबारों में छप जाती थीं। आज के असंतोष और आंदोलन की खबरें कुछ मिनटों में देश के हर हिस्से में ही नहीं, दुनिया भर में पहुंच जाती हैं। अण्णा और बाबा के आंदोलनों को देश से अधिक विदेशों से बड़ा समर्थन मिलता रहा है। इस दृष्टि से मुंडे जी की यह आशंका सही है कि असंतोष की आग 1974 की तरह उग्र हो सकती है लेकिन आंदोलनकारियों को नेतृत्व देने वाले कहां हैं? जे.पी. आंदोलन को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का बड़ा समर्थन मिला था। संघ में हिंदुत्व की विचारधारा से जुड़े समर्पित स्वयंसेवकों की अच्छी-खासी संख्या थी। अब चना-चबेना, सत्तू खाकर काम करने वाले स्वयंसेवक कितने हैं। जो हैं, उन्हें भाजपा सहित कई राजनीतिक दलों की गड़बड़ियों से गहरी नाराजगी रहती है। पराकाष्ठा यह है कि पिछले दिनों नागपुर के संघ स्वयंसेवक प्रशिक्षण शिविर में सरसंघचालक के साथ मंच पर ऐसे व्यक्ति भी खड़े दिखाई दिए, जिनके चाल-चरित्र और भ्रष्टाचार को लेकर भाजपा के नए-पुराने नेता तक सिर पकड़कर भर्त्सना करते मिलते हैं। जब संघ या उसकी समर्थित राजनीतिक पार्टी को कॉरपोरेट कंपनी समझने वाले लोग अगली पंक्ति में दिखाई देंगे तो जनता की समस्याओं पर असली आंदोलन कैसे खड़ा हो सकता है?

इसी तरह सत्ता में बैठे कई प्रभावशाली मंत्री जोड़-तोड़ में लगे रहते हैं। राजनीतिक विचारधारा या राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा निजी स्वार्थ के लिए वे विरोधी दलों के नेताओं और अण्णा-बाबा की टीम के सदस्यों से भी पर्दे के पीछे सौदेबाजी करते रहते हैं। वे जब विरोधी से टकराव लेने की हिम्मत ही नहीं जुटा पाते हैं तो इमरजेंसी जैसे कदमों की सलाह भी कैसे दे सकते हैं? वैसे भी सारी गड़बड़ियों और समस्याओं के बावजूद देश में इतनी लोकतांत्रिक जागरूकता आ चुकी है कि इमरजेंसी नहीं लग सकती। ऐसी स्थिति में भारतीय जनता के लिए सही ढंग से विरोध की आवाज उठाते हुए राजनीतिक दबाव बनाने की गुंजाइश है, वहीं अराजकता की स्थितियों को समय रहते रोकने के लिए जिम्मेदार राजनीतिक-सामाजिक संगठनों को रचनात्मक ढंग से अभियान चलाना होगा। अनर्गल कुप्रचार से देश-दुनिया को भ्रमित करने वालों को नियंत्रित करने की जिम्मेदारी केवल सरकार की नहीं, संपूर्ण समाज की है। लोकतंत्र में अराजकता और इमरजेंसी से देश को बचाना हर नागरिक का कर्तव्य भी है।

alokmehta@nationalduniya.com